दान-सम्बन्धी भाव-बोध के कुछ प्रेरक-प्रसंग

(स्वामी डॉ० विश्वामित्र जी महाराज)

'कल्याण' के फरवरी 2011 के अङ्क से

दीन को दु:खी को, अपाहिज को, निस्सहाय को, अनाथ को, भूखे-प्यासे को अर्थात् आवश्यकता वाले को अन्न-जल देना, वस्त्र देना, आश्रय देना और स्थान देना दान-धर्म कहा गया है। किसी अभाव ग्रस्त के अभाव को और जरूरत मन्द की जरूरत को द्रव्य एवं अन्य प्रकार की सहायता से पूरा कर देना दान माना जाता है। दान देने वाले को दानी या दाता कहा जाता है और लेने वाले को जरूरत मन्द। यह आवश्यक नहीं कि जरूरत मन्द भिखारी ही हों - भिक्षा दान माँगने वाले हों, सच्चे दानी उन विशिष्ट पात्रों को खोजते हैं जो माँगते नहीं, परंतु हैं जरूरतमन्द। ऐसों को देना मानुषी कर्तव्य - मानव धर्म है जिसके पालन करने में छोटे-बड़े का कोई भेद-भाव नहीं होता।

भारतीय सनातन संस्कृति सदा से ही त्याग-प्रधान रही है। दान के मूल में त्याग की ही भावना है। दानी होने के लिये हृदय संवेदनशील हो, दयालु हो, उदार हो और त्याग-प्रधान हो। अन्न, वस्त्र, धन अर्थात् वस्तुओं के दान को ही दान नहीं समझना, उत्तम परामर्श, पथ-प्रदर्शन भी दान है। भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, ज्ञानदान, विचार दान आदि दान के विभिन्न प्रकार हैं। तीर्थ स्थानों पर, शुभ पर्वों पर, सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के समय, संक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावास्या पर एवं सत्संग-स्थलों पर दान देना अनन्त गुना पुण्य-फल देता है। आवश्यकता होने पर किसी भी समय, किसी को भी दान देना धर्म है। कलियुग में तो एक मात्र दान को परम कल्याणकारी साधन बताया गया है। ऐसा धर्मराज युधिष्ठिर को भीष्म पितामह पूछने पर बताते हैं। प्रश्न था - 'जिसकी मृत्यु निकट हो, उसका परम हितैषी मित्र कौन है ? क्या यश? क्या धन-दौलत, विद्या या कुटुम्बी'? उत्तर मिला - 'नहीं राजन् ! ऐसे व्यक्ति के लिये दान ही परम हितैषी मित्र है। कलियुग में दान से भविष्य उज्जवल एवं उजागर होगा।' प्रजापति ने 'द' अक्षर के अन्तर्गत सकल मानव-जाति को दान देने का अर्थात् 'दिया करो' का ही उपदेश दिया था। (बृह० उप० 5/2/2)

एक बार महारानी सत्याभामा ने देवर्षि नारद जी से कहा - 'कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे प्रत्येक जन्म में मुझे श्री कृष्ण ही पति मिलें।' नारद जी ने कहा - 'आप जिस वस्तु का इस जन्म में दान करेंगी, वही अगले जन्म में मिलेगी। अत: श्री कृष्ण का दान करें।' सत्याभामा ने श्री कृष्ण को नारद जी को दान में दे दिया। नारद जी ने कहा - 'देवी ! दान दी हुई वस्तु मेरी, श्री कृष्ण अब मेरे हैं।' यह जानकर राज महल में कोलाहल होने लगा। देवर्षि ने कहा - 'वापस लेना चाहती हैं तो इन के तोल का सोना मुझे दे दें।' सभी रानियों के सब आभूषण श्री कृष्ण को तोल न सके, श्री कृष्ण का पलड़ा भारी। तभी पटरानी रुक्मिणी ने विनय पूर्वक कहा - 'प्रभु सोने से नहीं, प्रेम से तोले जाते हैं।' एक तुलसी का पत्ता लिया, उस पर 'राम' लिखा और उसे दूसरे पलड़े पर रख दिया। यह पलड़ा भारी और श्री कृष्ण का पलड़ा हलका होकर ऊपर उठ गया। परमात्मा का नियम सर्वविदित है, सामान्यत: जो द्रव्य, वस्तु, पदार्थ दान में दी जाती है, वही दाता को 10-20 गुना होकर मिलती है।

एक वृद्धा पेड़ के नीचे तपस्या करती रहती, पास में ही झोपड़ी थी। कोई सगा-सम्बन्धी नहीं, सदा नाम-खुमारी चढ़ी रहती, प्रियतम के ध्यान में सदा मस्त रहती। न माँगती, न माँगने की इच्छा ही रखती और न ही न देने वालों पर गिला-शिकवा ही करती - पूर्ण सन्तोष। एक दिन एक महात्मा पधारे, कहा 'देवी! भूख लगी है।' वृद्धा रोज अपने लिये दो रोटियाँ बनाती। एक दे दी। खा ली। पूछा-'और चाहिये?' 'हाँ।' दूसरी भी दे दी। महात्मा

कृपया पृष्ठ पलटिए

तृप्त, वृद्धा भी तृप्त, परन्तु भूखी। महल की छत पर खड़ी रानी यह दृश्य देख रही थी। तत्काल सेविका से कहा- 'वृद्धा भूखी है, उसे बीस पूड़ियाँ दे आओ।' तात्पर्य है कि परमात्मा अपने नियम के बहुत पक्के हैं कि प्रभु को या प्रभु के नाम पर दी गयी वस्तु दस-बीस गुना अधिक होकर लौटती है और किसी-किसी को तो असंख्य गुणा होकर मिलती है।

श्रीरामचरितमानस में उत्कृष्ट दान के प्रसंग से बहुमूल्य संकेत मिलते हैं। महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास श्री राम और लक्ष्मण जी को माँगने गये -

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा।।

(रा०च०मा० 1/207/10)

याचक एक मुनि, तपस्वी, ज्ञानी एवं मननशील हैं। अत: किसी सांसारिक वस्तु का दान नहीं माँगा, केवल प्रभु को पाने की उत्कण्ठा-वह भी यज्ञ-विनाश करने वाले राक्षसों के हनन हेतु, यज्ञ-पूर्ति तथा जन-कल्याण हेतु। ममता के कारण-पुत्र-स्नेह के कारण राजा दशरथ मुनि से अरज करते हैं -

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा।।
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं।।
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा।।

(रा०च०मा०1/208/3,5,8)

महर्षि वसिष्ठ राजा को समझाते हैं -

'इन उच्च कोटि के महात्मा को पुत्रों का दान दे कर लाभ-ही-लाभ होगा।' लाभ पर तो कृपण भी दान देने को तैयार हो जाता है। दो पुत्र दिये, लौटे चार पुत्र एवं चार बहुएँ। गुरु-सान्निध्य का यही फल कि व्यक्ति ममता एवं आसक्ति से मुक्त होने की दिशा में अग्रसर होता है तथा उस में दान-वृत्ति जाग्रत होती है। 'दान' देने में एक क्रम है - सब से पहले वस्तु का दान, तदुपरान्त वस्तु से ममता का दान और तत्पश्चात् 'मैं' दान देने वाला - इस अहंता का दान। तब दान होता है कल्याणकारी। देखें, प्रभु राम का दान कैसा? विभीषण आये और बोले -

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।

(रा०च०मा०5/45)

विभीषण के दीन वचन सुनने पर लक्ष्मण जी सहित गले मिले और अपने पास बैठा कर श्री राम जी ये वचन बोले -

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।

(रा०च०मा०5/46/4)

विभीषण 'लंकेश' सुन सकुचाये और कहा -

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।

(रा०च०मा०5/49/6)

'महाराज! स्वीकारता हूँ, पहले इच्छा थी, अब प्रभु के चरणों की प्रीति-रूपी नदी में बह गयी, अब बिल्कुल नहीं।' तब प्रभु ने कहा -

कृपया पृष्ठ पलटिए

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।

(रा०च०मा० 5/49/9)

'मित्र! क्या मैं इसलिये दे रहा हूँ कि लंका के राज्य की तुम्हें इच्छा है? नहीं ऐसा नहीं। सखे! यदि इच्छा होती तो राज्य छोड़ क्यों आते?' 'फिर क्यों दे रहे हैं प्रभु?' 'मित्र ! तुम, भले ही इच्छाओं से ऊपर उठ गये हो, पर मैं नहीं उठा हूँ। धन से बड़ी इच्छा है यश-कीर्ति की। मेरे विषय में प्रचार है, जब कोई श्री राम के पास जाता है, तो राम जरूर देते हैं। ऐसे में यदि राज्य स्वीकार न करोगे, तो मेरा यश नष्ट होगा। अत एव मेरे यश की रक्षा के लिये कृपा पूर्वक स्वीकार कर लो।' यह कह कर प्रभु श्री राम ने लक्ष्मण को समुद्र जल से विभीषण का राजतिलक करने का आदेश दिया और लक्ष्मण ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। इस दान पर मुग्ध हो कर देवतागण पुष्पों की वर्षा करते हैं। प्रभु को संकोच है कि मैंने कुछ भी तो नहीं दिया। वस्तुत: 'अहं' से मुक्त दान ही श्रेष्ठतम दान है। यहाँ इसी भाव-बोध के कुछ अन्य प्रसंग प्रस्तुत हैं -

(1)

दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध आश्रम की सच्ची घटना है - एक निर्धन तथा निर्बल ग्रामीण जो मजदूरी-मेहनत तो करता, पर अपने बड़े परिवार को भर-पेट रोटी देने में असमर्थ था। आज इस आश्रम में सन्त महाराज के पास गया, अपनी व्यथा सुनायी-'हम प्राय: भूखे सोते हैं, कोई नियमित काम-धन्धा नहीं, परिवार में अन्य कोई सदस्य कमाने योग्य नहीं, मजदूरी करता हूँ, जब काम मिल जाता है, थोड़ा-बहुत खा-पी लेते हैं, अन्यथा जल पीकर ही निर्वाह करते हैं।' सन्त का दयालु हृदय द्रवित हो उठा, तुरन्त कहा-'पैसे से तो जरूरत अस्थायी रूप से ही पूरी होगी, उस से क्या बनेगा? अत: एक दुधार गाय ले जाओ, अच्छा दूध देती है, दूध बेच कर पेट पालो।' व्यक्ति ने कहा-'स्वामी जी! जहाँ रहता हूँ, वह घर अपना नहीं, किसी का है, वहाँ गाय बाँधने का स्थान नहीं।' 'भाई! चिन्ता न करो, गाय बाँधने के लिये स्थान बनवा दिया जायगा।' 'परंतु महाराज! मेरे पास तो घास-चारा खरीदने के लिये फूटी कौड़ी भी नहीं।' सन्त ने कहा - 'आश्रम में घास बहुत है, हरी भी और सूखी भी, एक-एक गट्ठर रोज ले जाया करो।' एक सप्ताह में आश्रम ने स्थान तैयार करवा दिया, घास भी रोज ले जाता, कुछ दिन बाद व्यक्ति पुन: सन्त के पास आया और कहा-'गाय दूध ठीक दे रही है, परंतु बेचने की समस्या, कभी खरीदने वाला नहीं मिलता या कभी कीमत सही नहीं मिलती, हम ढेर सारे दूध का क्या करें?' सन्त ने सहर्ष कहा-'आप कल से दूध आश्रम को बेचा करें, उचित मूल्य मिलेगा।' कैसा अनूठा दान! अपनी ही गाय, अपनी ही घास से दूध खरीदकर, मूल्य चुकाकर आश्रम प्रयोग करता है। धन्य हैं ऐसे बुद्धिमान् महादानी!

(2)

एक कर्मचारी के घर बालक ने जन्म लिया। पैदा होते ही माँ मर गयी, पिता दु:खी, कौन पालेगा? उन्हीं दिनों एक अहीर की पत्नी को भी पुत्र-प्राप्ति हुई, पता चला तो पति से कहा-'रमेश साहब के बालक को भी ले आओ, दोनों को पालूँगी।' दोनों को साथ-साथ दूध पिलाया, जब बड़ा हुआ-पढ़ने योग्य तो पिता को लौटा दिया। पढ़कर एक अस्पताल में कम्पाउण्डर नियुक्त हो गया। अहीर की पत्नी बीमार हो गयी, अस्पताल में दाखिल करवायी गयी, वहाँ खून की आवश्यकता पड़ी। कम्पाउण्डर का खून मैच कर गया। ठीक होकर घर आ गयी। कम्पाउण्डर मिलने आया बोला-'आप मेरी पालने वाली माँ हैं, ये दो हजार रुपये रख लें, मेहनत एवं ईमानदारी की कमाई है। यह खून आप का ही है, आप के ही दुग्ध-दान से बना हुआ है। ' दान की महिमा-इस दानी माँ की कथा से वर्णन की जाती है।

कृपया पृष्ठ पलटिए

(3)

एक वीर सेठ की करनी याद आती है – एक सन्त से विनय पूर्वक उपदेश देने की प्रार्थना की। 'लाला! माया का नाश तो एक दिन होगा ही, काया भी अमर नहीं, केवल सत्कर्म अमर हैं। पूँजी परमेश्वर की दी हुई है, इसे परमार्थ में खर्च करो और सत्कर्मों की सच्ची पूँजी एकत्रित करो, अवसर चूकोगे तो पछताओगे।' सेठ अति प्रभावित कहा-'बाबा ! सारी सम्पत्ति भूख से तड़फड़ाते, मरते लोगों की जीवित रखने में लगा दूँगा।' औरंगजेब के शासन काल की घटना है, गुजरात तथा महाराष्ट्र में भीषण अकाल। भयानक दुष्काल में जनता अन्न के एक-एक दाने को तरस रही थी। जगह-जगह पर मुर्दे-ही-मुर्दे दिख रहे थे। सेठ धन विहीन हो गये, तिजोरियाँ रिक्त हो गयीं, पर जीवन दान देने का सन्तोष-सुख एवं आनन्द अपार है लाला के हृदय में। एक दिन प्रात: प्रभु के ध्यान में मग्न बैठे थे, एक बंजारे ने द्वार खटखटाया, सिर पर गठरी, श्रद्धा पूर्वक सेठ को मस्तक नवाया, सिर झुकाया, कहा-'मेरा नाम रघुवर है, इस समय आप के ध्यान में बाधा पड़ी है, कृपया क्षमा करें।' 'भाई बंजारे! इस घर को अपना ही समझो, कहो क्या आज्ञा है?' 'मुझे दूर जाना है, गठरियाँ रख लो, लौटते समय ले लूँगा।' चल दिया बंजारा और लाला गठरियाँ गिनकर, सँभाल कर रख रहे थे तो एक पत्र चिपका हुआ मिला, लिखा था - 'सेठ जी ! माया का मोह छोड़कर आपने जन सेवा में सारी पूँजी लगा दी, मौत के मुख से लोगों को निकाला, मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम मुझे पहचान नहीं सके ; मैं वही हूँ, जिसका तुम अभी ध्यान कर रहे थे। अपार धन-सम्पत्ति से भरी गठरियाँ सब तुम्हारी हैं, स्वीकार करना। दान में दी हुई वस्तुएँ एवं सामग्री ही तुम्हें वापस दी गयी है।' सेठ के नेत्रों में प्रेमाश्रु, बंजारे का पीछा किया, परंतु 'राम' कहाँ हाथ लगते हैं, वे तो अपना काम करके चले गये। जो बाँटना चाहो, देना चाहो, उसे पहले अर्जित एवं संचित करने की जरूरत है।

रावण की मृत्यु पर विभीषण रोये और कहने लगे - 'मेरे भाई ने सम्पत्ति तो प्रचुर एकत्रित की, परंतु प्यार की पूँजी नहीं। आज हे राम-प्रभु! मैं ऐसी सम्पत्ति का अधिकारी बन बैठा, लगता है भारी अपराध कर रहा हूँ, सिर पर भारी बोझ है।' राघवेन्द्र सरकार समझाते हैं - 'विभीषण! सम्पत्ति बोझ तब; जब इसे सत्कार्यों में – जन - कल्याण के लिये न लगाया जाय। हमारा देश संग्रह के कारण नहीं, त्याग के कारण पूजा जाता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जितना जिसने बाँटा, उतना उस का सम्मान, उतना वह महान्।' इसीलिये वेद का उपदेश है – सैकड़ों हाथों से उपार्जन करो और हजार हाथों से उसे बाँट दो। (अथर्व० 3/24/5)

— o —